ॐ

ऋषिपूजा
की
वैदिकविधि

लेखक
राज्यरत्न आत्मारामजी

प्रकाशक
महेन्द्र प्रताप कंपनी बडोदा

मूल्य =)
१९२४

भारतविजय प्रेस बडोदा

वैदिक धर्म प्रचारक माला.

प्रथम पुस्तक मज़हबे इस्लाम पर एक नजर मू० =) १०० प्रतियों का मूल्य ७) डाकव्यय पृथक्

मिलनेका पताः—

महेन्द्रप्रताप कंपनी कारेलीबाग बडोदा

महर्षि दयानन्द का जड़ स्मारक

नहीं चाहिये

लेखक-(राज्यरत्न आत्मारामजी अमृतसरी, बड़ोदा)

(१) प्रथमहेतुः—आर्य्य समाजके दश नियमों में कहीं भी जड़ स्मारक (स्तूप) रचने रचाने की गन्ध तक नहीं।

(२) दूसराहेतुः—आर्य्य समाजके उपनियमों में जहां मरे हुए आर्य्यों के अनाथबच्चों की रक्षाका विधान है जहां न्याय आर्य्य सभाद्वारा घरकी पंचायत करने का वर्णन है वहां उनमें कहीं भी जड़ स्मारक (स्तूपादि) रचने रचाने की गन्ध तक नहीं।

(३) जो मनुष्य आर्य्य समाजका सभासद बनता है उसको सबसे पहिले नियम फिर उपनियम जानने होते हैं। इसके पीछे यदि वह सच्चा ऋषि भक्त है तो उसको महर्षि दयानन्द रचित पंचमहायज्ञविधि आदि ग्रन्थ अवश्य पढ़ने और मनन करने होंगे। पंच महा

यज्ञविधि में निम्न लिखित दो स्थलोंपर वह जहां ऋषि कोटि के महा पुरुषों के पूजनै का विधान पाता है वहां कहीं भी उसको उनके मरने के पीछे जड़ स्मारक बनाने का एक शब्दभी नहीं मिलता ।

(क) " अथ तृतीय पितृ यज्ञः ॥ तस्य द्वौ भेदौस्तः । एकः—स्तर्पणाख्यो द्वितीयः—श्राद्धाख्यश्च । तत्र येन कर्म्मणा विदुषो देवानृषीन् पितृंश्च तर्प्पयन्ति सुखयन्ति तत् तर्प्पतान् । तथा यत्तेषां श्रद्धया सेवनं क्रियते तच्छ्राद्धं वेदितव्यम् । तदे तत् कर्म विद्वत्सु विद्यमानेष्वेव घट्यते । नैवमृतकेषु । तेषां सन्निकर्षा भावेन सेवना शक्यत्वात् । मृतकोद्देशेन यत्क्रियते नैव तेभ्यस्तत्प्राप्तं भवतीति व्यर्था पत्तेः ।

पंचमहायज्ञविधिमें महर्षि दयानन्दजीने पितृयज्ञमें उपरोक्त संस्कृत वचन लिखे हैं । इससे विद्वान् देव, ऋषि और पितृलोगोंके जो जीतेहों श्राद्ध तथा तर्पण करनेका विधान् तथा मृतक के उद्देश्यसे जो किया जाता है वह उसको अप्राप्त है इस लिये वह व्यर्थ है ।

अतः कोई भी जड़ स्मारक मुक्ति पाए हुए महर्षि दयानन्दजी के उक्त उद्देश से सर्वथा व्यर्थ है।

(ख) उक्त पंचमहायज्ञविधिके आतिथि यज्ञमें "व्रात्य तर्पयन्तु" इस वेद मन्त्रसे महर्षि दयानन्दजी जीवित अतिथिकोही जल अन्नपानादि द्वारा प्रसन्न करनेका विधान करते हैं। और उसकी मृत्यू पीछे उसका कोईभी जड़ स्मारक रचने को नहीं लिखते।

(४) फिर जिज्ञासु सत्यार्थ प्रकाश चतुर्थ समुल्लास में पृष्ठ १०० (१५ वां संस्करण) पर विशेष रूपसे ऋषितर्पण का विधान् इस प्रकार पाता है।

ओं मरीच्यादय ऋषयस्तृप्यन्ताम्। मरीच्याद्यृषिपत्न्यस्तृप्यन्ताम्। मरीच्याद्यृषिसुतास्तृप्यन्ताम्। मरीच्याद्यृषि गणास्तृप्यन्ताम्। इतिऋषितर्प्पणम् जो ब्रह्मा के प्रपौत्र मरीचिवत् विद्वान् होकर वढावे और जो उनके सदृश विद्यायुक्त उनकी स्त्रियां कन्याओं को विद्यादान देवें उनके तुल्य पुत्र और शिष्य तथा उन के समान उन के सेवक हों उनका सेवन और सत्कार करना ऋषि तर्पण है।

(ख) सत्यार्थ प्रकाश में अनेक स्थलों पर दानका विषय

आया है और समुल्लास ६ में जहां अप्राप्त धनको धार्म्मिक पुरुषार्थ से प्राप्त करने का विधान है वहां निम्न लेख है।

अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत्प्रयत्नतः ।
रक्षितं वर्द्धयेच्चैव वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत् ॥१॥

राजा और राजसभा अलब्धकी प्राप्तिकी इच्छा प्राप्त की प्रयत्नसे रक्षा करे, रक्षित को बढावे और बढे हुए धनको वेदविद्या, धर्मका प्रचार विद्यार्थी, वेद मार्गोपदेशक तथा असमर्थ अनाथोंके पालन में लगावे । (देखो पृष्ठ १४८; १५ वां संस्करण)

(५) व्यवहारभानुमें जहां महाभारतके निम्न श्लोकों द्वारा अनेक प्रकार के शूरवीर गिनाये हैं जिस पर कारलायल के भक्त मुग्ध हो सकते हैं और कारलायल से पहिले व्यासदेवने (हीरोवर्शिप) अर्थात् वीर पूजन उक्त श्लोकों में वर्णन किया है:—

वेदाऽध्ययन शूराश्च शूराश्चाध्ययने रताः ॥
गुरु शुश्रूषया शूराः पितृ शुश्रूषयाऽपरे ॥१॥

मातृ शुश्रूषया शूरा भैक्ष्य शूरास्तथाऽपरे ।
अरण्ये गृहवासे च शूराश्चाऽतिथि पूजने ॥२॥

जो मनुष्य वेदादि शास्त्रों के पढ़ने पढ़ाने में शूरवीर जो दुष्टोंके दलन और श्रेष्टों के पालन में शूरवीर अर्थात् दृढोत्साही उद्योगी जो निष्कपट परोपकारक अध्यापकों की सेवा करके शूरवीर, जो अपने जनक की सेवा करके शूरवीर ॥ १ ॥ जो माता की परिचर्यासे शूर जो संन्यासाश्रम से युक्त अतिथिरूप हो कर सर्वत्र भ्रमण करके परोपकार करने में शूर होते हैं वेही सब सुखों के लाभ करने कराने में अत्युत्तम हो के धन्यवाद के पात्र होते हैं कि जो अपना तन मन धन विद्या और धर्मादि शुभ गुण ग्रहण में सदा उपयुक्त करते हैं"॥

महर्षि दयानन्द के उक्त आर्य्य भाषा के यह वचन कि जो " संन्यासाश्रम से युक्त अतिथिरूप होकर सर्वत्र भ्रमण करके परोपकार करने में शूर हैं " इनमें कहींभी मरने पर इनके लिये जड़ स्मारक का विधान नहीं किया । ऋषि की आज्ञानुसार तन मन और धन का व्यय विद्या और धर्मादिशुभ गुण ग्रहण करने कराने में सदा उपयुक्त

करना चाहिये न कि अन्य कामों में यथा जड़ स्तूपादि ।

(६) संस्कारविधि 'रचकर 'महर्षि दयानन्दने इतना बड़ा उपकार किया है जिसका वर्णन हो नहीं सकता। इसमें अन्त्येष्टि संस्कार अन्तर्गत महर्षि दयानन्द के निम्न वचन प्रत्येक जिज्ञासु को कमसे कम दस बार अवश्य पढ़ने चाहियें। जिससे जड़ स्मारकका विचार स्वयं ही सदैव के लिये उसके मनसे निकल जावे ।

" भस्मान्तंशरीरम् यजुर्वेदके मन्त्रके प्रमाणसे स्पष्ट हो चुका कि दाह कर्म्म और अस्थि संचयनसे पृथक् मृतकके लिये दूसरा कोईभी कर्म कर्त्तव्य नहीं है हां यदि सम्पन्न होतो अपने जीते जी वा मरे पीछे उनके सम्बन्धी वेदविद्या वैदिक धर्मका प्रचार अनाथ पालन वेदोक्त धर्म्मोपदेश प्रभृति के लिये चाहे जितना धन प्रदान करें बहुत अच्छी बात है ।' [देखो संस्कार विधि दशम संस्करण पृष्ठ २७७].

(७) महर्षि दयानन्द सदैव साधारण तथा राजे महाराजे और धनिक पुरुषों को विद्या धर्म प्रचार और अनाथ पालन में ही धन लगाने का उपदेश देते रहे,

और यही कारण है कि श्रीमान् राजाधिराज शाहपुराधीशजी ने उनसे उक्त उपदेश ग्रहण कर अपने राज्य में स्कूल पाठशाला आदिका उत्तम प्रचार किया है। जब महर्षि दयानन्दजीने कविराज श्यामलजी से उदयपुर में उनकी पत्थरकी मूर्ति बनाने का विचार जानातो उनको रोक दिया। [देखो श्री धर्म वीर पं. लेखराम कृत बृहत्‌ जीवन चरित्र प्रथम संस्करण पृ. ५५८] जिसमें यह लेख है।

" एक दिन मैंने अर्जकी कि आप का स्मारक चिन्ह बनाना चाहिये। फरमाया कि नहीं, बल्कि मेरी भस्मी को किसी खेत में डाल देना काम आयेगी। कोई स्मारक न बनाना ऐसा न हो कि मूर्ति पूजा हो जाय मेरा खुद भी पहिले इरादा था कि अपनी [पत्थर की मूर्ति] बनवाउं फरमाया कि कविराजजी ऐसा न करना मूर्तिपूजा की बुनियाद यही है "।

इस के अतिरिक्त जोधपुर में जब महर्षि दयानन्दजी श्रीमान् राओ राजा तेजसिंह जी के साथ सैर करते हुए उनके स्वर्गस्थ बड़ों की समाधें देखने गये तो बड़ा

भारी उपदेश उनको दिया और कहा कि यह समाधें तथा जड़ स्मारक व्यर्थ हैं। ईश्वर कृपासे श्रीमान् राव राजा तेजसिंहजी इस काल तक जीवित हैं। और गत वर्ष उनकी लेखनी से ही सद्धर्म्मप्रचारक तथा आर्य्य मित्र में इसी बात पर लेख निकल चुके हैं, जिसमें उन्होंने विस्तार से बतलाया है कि किस प्रकार महर्षि दयानन्दजी ने जड़ स्मारक बनाने से उनको रोका था। इस परभी यदि कोई ऋषि भक्त कहलाता हुआ स्तूप बनानेका आग्रह करे तो देश के दुर्भाग्य ही हैं।

(८) बम्बई और पूने में जो सार रूपसे उन्होंने अपना जीवन चरित्र वर्णन किया था उसका अन्तिम भाग इस प्रकार है। देखो पं. लेखराम कृत जीवन चरित्र।

" इस प्रकार मेरा पूर्वका चरित्र है। आर्य्य धर्म्म की उन्नति हो, इस लिए मेरे सदृश बहुतसे धर्म्मोपदेशक अपने इस देशमें उत्पन्न होने चाहियें। अकेले के हाथ से यह काम दुरुस्त नहीं होता है तथा मेरी बुद्धि और सामर्थ्य के अनुकूल मैंने जो दीक्षा ली है उसे चलाऊंगा ऐसा संकल्प किया हुआ है। आर्य्य समाज की सर्वत्र

स्थापना होकर मूर्तिपूजा आदिक दुष्ट आचार सब जगह न हों।" हमारी सम्मति में मूर्ति पूजा आदिक यह शब्द सौवार मनन करने योग्य हैं। आदिक शब्द सब जड़ स्मारक स्तूपादि का निस्सन्देह बोधक हो सकता है।

(९) सत्यार्थ प्रकाश ११ वें समुल्लास के पृष्ट ३११ (१५ वां संस्करण) पर मूर्ति पूजन का निषेध करते हुए महर्षि दयानन्दजी ऐसा लिखते हैः—

"सातवांः—जब कोई किसी को कहे कि हम तेरे बैठने के आसन वा नामपर पत्थर धरें तो जैसे वह उस पर क्रोधित होकर मारता वा गाली प्रदान देता है....

अब हमें ऋषि के शब्दों पर अतीव मनन करना होगा, 'स्तूपरचन' क्या है—सच पूछो तो ऋषिके नाम पर पत्थर धरना है। इस नाम पर पत्थर धरने को महर्षि अत्यन्त बुरा समझते थे—यहां तक कि उन्होंने आपने लेख में दर्शा दिया कि कोई भी मनुष्य अपने नाम पर पत्थर धरना नहीं चाहेगा।

फिर इसी पृष्ठ पर ऋषिवर यह लिखते हैं किः—

"जड़ का ध्यान करने वाले का आत्मा भी जड़ बुद्धि हो जाता है।"

ऋषि के इस वचन से पाया गया कि स्तूप रचन और तद् सम्बन्धी विचार करने और सोचने आदि से आत्मोन्नति का अवश्य ह्रास होगा।

फिर पृ. ३३२ तथा ३३३ पर ऋषि वर लिखते हैं कि:—जो सच्ची पंचायतन वेदोक्त और वेदानुकूल देव पूजा और मूर्ति पूजा है, सुनो.... .... प्रथम माता मूर्त्तिमती पूजनीय देवता, दूसरा पिता सत्कर्त्तव्य देव, उसकी भी माता के समान सेवा करनी। तीसरा आचार्य जो विद्या का देने वाला है उसकी तन मन धनसे सेवा करनी। चौथा अतिथि जो विद्वान धार्मिक, निष्कपटी, सब की उन्नति चाहनेवाला, जगत् में भ्रमण करता हुआ सत्य उपदेश से सबको सुखी करता है उसकी सेवा करें। पांचवां स्त्री के लिये पति और पुरुष के लिये पत्नी पूजनीय है।

(१०) सत्यार्थ प्रकाश १४ वें स. संख्या ३० पृ. ५६५ पर ऋषिवर इस सम्बन्धी लिखते हैं कि:—

" अपना मुख मस्जिद दुल्हाराम की तरफ फेर "

" समीक्षक-क्या यह छोटी सी बुतपरस्ती है ? नहीं बडी !

(पूर्व पक्षी)-हम मुसल्मान लोग बुतपरस्त नहीं हैं किन्तु बुतशिकन अर्थात् मूर्तिको तोडने हारे हैं। क्यों कि हम किबले को खुदा नहीं समझते ।

(उत्तर पक्षी)-जिनको तुम बुतपरस्त समझते हो वे भी उन उन मूर्त्तों को ईश्वर नहीं समझते । यदि बुतों के तोड़ने हारे हो तो उस **मस्जिद् किबले बडे बुत को** ....

मस्जिद्को ऋषि वर वड़ा बुत् लिख रहे हैं । ऋषि के इसी न्याय मार्ग पर चलकर हम कह सकते हैं कि वह स्तूप भी तो बडा बुत होगा । अतः स्तूप निर्माण करना मानो मूर्तिपूजा की नींव डालना है ।

महर्षिदयानन्द की अन्तिम इच्छा

(११) सिकन्दर शाहने मरण समय अन्तिम इच्छा यह दर्शाई थी कि मेरे दोनों खाली हाथ कफन से बाहर रखना । उसकी वृद्धा माताने उसकी अन्तिम

इच्छाको पूर्ण किया। ऋषि ऋण ऋषि ऋण की दुहाई मचानेसे हम कभी ऋषिभक्त नहीं हो सकते, जब तक की उनकी अन्तिम इच्छाको जान कर तदनुसार काम न करें।

उनकी अन्तिम इच्छाएंनिम्न ३ प्रकारकी हैं।

१ वेद और वेदाङ्ग आदि शास्त्रों के प्रचार अर्थात् उनकी व्याख्या करने कराने, पढ़ने पढ़ाने, सुनाने, छपने छपवाने आदि में धन लगाना।

२ वेदोक्त धर्म के उपदेश और शिक्षा अर्थात् उपदेशक मंडली नियत करके देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर में पहुंचकर सत्य के ग्रहण और असत्य त्याग आदि में।

३ आर्य्यवर्त्त के अनाथ और निर्धन मनुष्यों के पालन पोषण तथा शिक्षण में धन खर्च करें और करावें।

इस में कहीं भी स्तूप रचन वा जड़ स्मारक की गन्धतक नहीं है। ऋषि की जो अन्तिम प्रबल इच्छा है उसको पूर्ण न करते हुए व्यर्थ स्तूप रचने का विचार त्यागना उचित है। क्यों न प्रोफेसर रामदेवजी तथा महात्मा
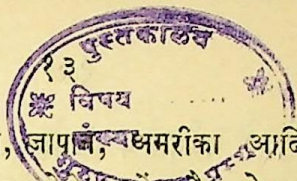
नारायणस्वामीजी चीन, जापान, अमरीका आदि देशों में इस शताब्दी के समय भेज. जावें और जो धन जड़-स्तूप पर खर्च होगा वह इधर खर्च हो सकता है।

ऋषि दयानन्दके जीते जागते स्मारक

आर्य्य युवक बनेंगे

(१२) पाठकों को यह बात पूर्ण रीतिसे ज्ञात है कि मुनिवर महात्मा पं. गुरुदत्तजी व्याख्यानों में कहा करते थे कि हम **ऋषिजीवन** अपने जीवन में लिखेंगे और हमने ऋषिजीवन की भूमिका अपने जीवन-द्वारा लिखली है। आजकल जो आर्य्य कॉलेजों तथा आर्य्य गुरुकुलों से सर्वत्र ग्रेजुएट तथा स्नातक निकल रहे हैं-इनसे हम आशा करेंगे कि यह ऋषि जीवनको पं. गुरुदत्त समान अपने जीवन में धारण करके बतलावें। अमेरिका के योगी डेविसका मत है कि महान पुरुष एक शताब्दी अपने देशकी प्रजासे पूर्व होते हैं। इस लिये हमें आशा करनी चाहिये कि आजसे ५० वर्ष पीछे इस देशमें अनेक दयानन्द होंगे। ऋषिस्वयं लिख गये हैं कि मुझसे अनेक उपदेशक इस देशमें हों।

(१३) धर्मवीर पं. लेखरामजी कृत वृहत् जीवन चरित्र प्रथम संस्करण के पृष्ट ९०८ पर महात्मा पं. गुरुदत्तजी के वचन इस प्रकार हैं–उनके पढने से स्तूप रचने रचानेका भ्रम सत्यप्रिय आर्य दूर करसकते हैं।:–

पं. गुरुदत्तजी अपने लैकचरों में कहा करते थे कि "ईंट पत्थर पर किसी ऋषि के नाम खुदवादेने से ऋषि की यादगार नहीं बन सकती।"

आर्य्य युवकों की उन्नति को रोकने वाली वस्तु स्तूप है इस के भावको दूर करने से हम जीवन स्तूप तैयार करेंगे। धर्म वीर रामचन्द्रने गतवर्ष प्राण तक देकर ऋषि भक्ति के हमें दर्शन कराये। जो आर्य सज्जन ऋषि भक्त हैं उनको जीवन सुधार के लिये यत्न करना चाहिये। हम खात मुलमुरसलीन ऋषि दयानन्द को नहीं मानते।

(१४) ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका तथा महर्षि कृत ऋग्वेद तथा यजुर्वेद भाष्य में कहींभी स्तूप वा जड़ स्मारक का वर्णन नहीं–अतः हम कह सकते हैं कि यह स्तूप विधान ऋषि दयानन्द तथा आर्य समाज के साहित्य से बाहिरकी वस्तु है।

(१५) वैदिक कालमें रामायण तथा महाभारत के आधार पर हम सिद्ध कर. सकते हैं कि कभी किसी संन्यासी वा ऋषि मुनि का जड़ स्मारक नहीं बनाया गया। गौतम, कणाद, आदि किसी भी महर्षि का जड स्मारक वा स्तूप आदि नहीं बने अतःयह अवैदिक प्रथा समझो।

(१६) आर्य्य समाजमें पं. गुरुदत्तही एक व्यक्ति थे जिनको पूर्ण रूपसे हम ऋषि दयानन्दजी के-पूर्णभक्त कह सकते हैं। इस कालतक एक भी उन के समान ऋषि भक्त नहीं है। हां यह ठीक है कि पौराणिकों को प्रसन्न करने के लिये हम में से अनेक उपदेशक महर्षि दयानन्द को "भगवान" कहते और उत्सवोंपर काँग्रेस नेताओं की नकल में उनके 'जय कारे' बुलाते हैं "दयानन्दाय नमः" तक कह डालते हैं। जो लोग ऋषि दयानन्द के लेखोंपर नहीं चलते न जीवनमें उनके गुण कर्म धारण करते हैं वह ऋषिभक्त कैसे ?

(१७) अच्छा हम पूछते हैं कि क्या महर्षि दयानन्द से बढ़कर इस युग में कोई गुरु भक्त हुआ है। पं. गुरुदत्तजी अपने व्याख्यानों में सदैव कहा करते थे कि

ऋषि दयानन्दने जहां सब बातों में कमाल कर दिया है वहां गुरुभक्ति में भी कमाल ही किया है। वह कहते थे कि इतना माननीय तपस्वी दयानन्द जिनका मान राजे करें वह अपने अपूर्व सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थकी समाप्ति पर परमहंस स्वामी विरजानन्द का अपने आपको [शिष्य] लिखता है। यही नहीं परंच वेद भाष्यके प्रत्येक खंडकी समाप्ति पर अपने आपको "श्रीमान् परमहंस परिव्राजकाचार्य परम विदुषां श्री विरजानन्द स्वामिनां शिष्येण श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामिना विरचितः" इस प्रकार लिखता है। और जिसने जो दीक्षा उक्त गुरूवर के सामने ली उसको पूर्ण करने के लिये कभी पानमें कभी मिठाई और अन्तको विषपान से ही प्राणतक देता है। सर्वत्र अज्ञानी प्रजासे गालियेंईटें और पत्थरही खाता है। उस ऋषि दयानन्दने जिस प्रकार गुरुभक्ति अपने जीवन द्वारा कर दिखाई उसी प्रकार उन लोगों को जो पूर्ण ऋषिभक्त बनना चाहते हैं पण्डित गुरुदत्त समान कर दिखानी चाहिये। यदि स्तूप रचने रचाने वा जड स्मारक बनाने बनवाने से महर्षि विरजानन्द का स्मारक हो सकता तो क्या ऋषि दयानन्द यत्न न करते। इस

लिये गुरुभक्तिकी अन्ध श्रद्धाकी लहरमें मत बहजाइये किन्तु अपने ग्रन्थों को ऋषि दयानन्द के नाम समर्पण करो, और अपने जड शरीरको स्तूप बनाओ और गुरुदत्त तथा लेखराम आदि समान निर्भय सत्यवक्ता उपदेशक बनकर इस अपने जीवनको स्मारक जीवन बना दो।

(१८) ईंट पत्थर का स्तूप यदि हम बनावें तो जैनी सेठ चान्दी सोनेका अपने उपदेशकों का बनाकर हम को मात कर सकते हैं। उनके मन्दिरामें इस समय भी रत्न जड़ित मूर्तियें हैं। आर्य समाज के प्रताप से देश से ऐसे मन्दिर बनने की प्रथाकम हो गई है। जो आर्य समाज करेगा भारत प्रजा उसकी नकल करेगी।

(१९) स्वामी श्री श्रद्धानन्दजीने सहस्त्रों की संख्या में गुरुकुल कांगडी के महात्म सम्बंधी पुस्तक भारत प्रजा में बाटकर इस बातका नाद वजा दिया कि "सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते" और यह बहुत उपयोगी काम हुआ किन्तु हम यह कह सकते हैं कि कोई भी इस के विपरीत स्तूप की विशेषता न बता सकेगा।

(२०) कई सज्जन कहा करते हैं कि स्तूप अमर

इतिहास है परन्तु उनको यह मालूम नहीं कि जब राज्य क्रान्ति होती है तो-अमर इतिहास खण्डरात का नाम पाते हैं। इतिहास कहता है कि पृथ्वीराजकी कन्या ने राय पिथौराकी लाट बनवाई किन्तु अब उसका नाम कुतुबमीनार है और गीताका एक श्लोक भी उसके अन्दर नजर नहीं आता। सर्वत्र अरबी भाषाके महा वाक्य मिलते हैं। इस पर भी यदि स्तूपवादियों की आंख न खुले तो देशके बुरे दिन समझिये।

(२१) यदि आप पुराने ऋषियोंका गौरव संसारमें फैलाना चाहते हो तो ग्राम २ में संस्कृत साहित्यके उद्धारार्थ ब्रह्मादेशके समान वा बड़ोदा राज्यकी न्यंई पाठशालायें तथा मुफ्त पढानेवाले स्कूल जारी कर दो, और ऋषिओंके ग्रंथोंका प्रचार करो।

(२२) हम लिख चुके हैं कि वेद भाष्यमें स्तूप का वर्णन नहीं। उपवेदमें भी नहीं है, उपनिषदों में नहीं, वेदांग उपांग में नहीं यहां तक धर्मशास्त्र मनुस्मृतिमें नहीं फिर न मालूम यह अवैदिक संस्कार हमारे दिमागों में कहां से घुस गया। धर्म शास्त्रमें लिखा है कि यज्ञ करने से

देव ऋण, सन्तान उत्पन्न करने से पितृ ऋण और विद्या पढ़ने पढ़ाने से मनुष्य ऋषि ऋण से मुक्त होता है और इसी लिये आर्य समाजने ऋषिऋण से मुक्त होने के लिये गुरुकुलें तथा दयानन्द कॉलेज आदि बनाये।

(२३) कोई कह सकता है कि यह स्तूप किसका बनेगा, हम कहा करते हैं कि किसीका भी नहीं बन सकता, कारण कि आर्य बन्धु ऐसे कृतघ्न क्या होंगे कि अपने धर्म्मोपदेशक महर्षि दयानन्दकी इच्छा विरुद्ध उसीका स्तूप बना डालें, जो जोधपुर में राजाओं की समाधों और स्तूपों के विरुद्ध उपदेश देता रहा। यदि कोई कहे कि आर्य समाजके निमित्त स्तूप बनेगा तो हम कहेंगे कि ईश्वर कृपासे आर्य समाज को अभी मरनेका भय नहीं। रजो गुणी राजा वृद्धावस्था में आकर कीर्ति फैलाने के विचारसे स्तूप बना गये। इस लिये याद रखना चाहिये कि यह स्तूप रजो गुणी राजाओं का व्यसन है न कि उपयोगी इतिहास।

(२४) सिकन्दरिया में पुस्तकालय जलाया गया किन्तु ब्राह्मणोंने वेदादि शास्त्र कण्ठस्थ कर उनकी

रक्षाकी । और यह वेद पाठी ब्राह्मण अमर स्तूप का काम देने वाले सिद्ध हुए, अबभी यदि शास्त्रों को सुरक्षित रखना चाहते हो तो जिस प्रकार स्वस्तिवाचन आदि के मन्त्र अनेक आर्य बन्धु कण्ठकर उसकी रक्षा करते हैं उसी प्रकार अनेक शास्त्रोंको कण्ठकरने वाले वेद पाठी चाहियें न कि जड़ स्तूप ।

(२५) ऋषि दयानन्द विरक्तसच्चा संन्यासी था, इस बातको हम भूल जाते हैं । लोकेष्णा से पृथक् रहकर निष्काम कर्म सच्चा संन्यासी ही करता है । वह संन्यासी दयानन्द जिसने अपने सम्बन्धियों के नाम तक नहीं बताये, उसका अब स्तूप रचवा कर हम उसे गौरव हीन करेंगे क्या ?

(२६) एक स्थलमें यदि हवन कुण्डमें मलमूत्र पड गया तो स्तूप वादियों की मण्डली और समग्र आर्य समाज उसको बचा न सका किन्तु बडे भारी स्तूप के ऊपर यदि स्तूप द्वेषी प्रहार करेंगे तो उसको बचाने वाला कोई नहीं है । और यदि उसकी रक्षाके लिये एक महकमाजारी करोगे तो फिर मन्दिर और भिक्षुक पुजारीका युग आरम्भ हो जायगा ।

(२७) वैदिक धर्म्मका एक मात्र अनोखापन केवल यह है कि इसमें सत्य सिद्धान्त भरे हुए हैं। सत्य का कोई खण्डन नहीं कर सकता। हमारा दिग्विजयी स्तूप केवल सत्य है इसी वास्ते महर्षि दयानन्दने अपना महा वाक्य "सत्यमेव जयते नानृतम्" बनाया। और महात्मा गान्धी जीका भी महावाक्य यही है।

(२८) अमेरिका और बडोदा राज्यमें सरक्युलेटीङ्ग लाईब्रेरिज़ अथात् फरतुं पुस्तकालयों की प्रथाजारी है। इससे ग्राम २ में विद्याका भारी प्रचार होगया है किन्तु महाराजा बडौदाने कहीं भी विद्यावृद्धिके लिये स्तूप नहीं बनवाये, और न अमेरिका आदि उन्नत देशोंमें बनाये जारहे हैं।

" कबरें " जिस प्रकार भूमिको वृथा रोकनेसे कृषिकार्य में विघ्न रूप हैं उसी प्रकार स्तूप, समाधें और जड़स्मारक समझने चाहियें।

(२९) एक बाल कथाकी पुस्तकमें जो अनेक स्कूलोंमें पढाई जाती है एक कथा इस प्रकार है:—

" एक दिन एक सेठानी अपने हीरे आदि रत्नों

की मालाएं एक विदुषी स्त्रीको दिखा, दिखा, कर कह रहीथी कि यह हैं मेरे रत्न ” जब वह दिखा चुकी तो विदुषी स्त्रीने जो सादा वेष में स्वयंथी अपने दो सुशील तथा आज्ञाकारी पुत्रों को बुलाकर जो केवल एकही वस्त्र पहिने हुए थे उसे कहाकि “ यह हैं मेरे रत्न ” इस पर सेठानी समझ गई और कह उठी कि सच्चा सुच्चे रत्न तेरे पास हैं मेरे पास तो केवल जड पदार्थ हैं ।

आर्य समाज आजतक कह रहा था कि मेरे रत्न मुनिवर पं. गुरुदत्त, धर्मवीर लेखराम, वीर रामचन्द्र, लाला लजपतराय, महात्मा हंसराज, स्वामी श्रद्धानन्दजी, राय. ठाकुरदत्तजी, चौधरी जयकृष्ण, महात्मा नारायण स्वामी, महात्मा स्वामी सर्वदानन्दजी, स्वर्गस्थ स्वा० नित्यानन्दजी सरस्वती, स्वा० दर्शानन्दजी, श्री. पं, गणपति शर्म्मा, श्री. पं. तुलसीरामजी, महात्मा दुर्गाप्रसादजी, पं. पूर्णानन्दजी, चौधरी रामभजदत्तजी, पं. भगवानदीनजी, श्री. पं. रैमलजी, पं. जगतसिंहजी आदि हैं । पर जब जड स्मारक के भाव फैल जांयगे तब लोग कथाकी सेठानी की न्याई जड रत्नों की महिमा में समाजके जीवित रत्न भुला देंगे और जिस

देश वा समाजमें नररत्न पैदा नहीं होते वह समाज पौराणिकों तथा जैनियों के मन्दिर रखता हुआ भी निर्जीव है। कोईभी स्तूप व मीनार उन्नति का कारण नहीं किन्तु एक मात्र " सत्य धर्म वा वैदिक धर्म्म ही " उन्नतिप्रद है। ईश्वर करें कि हम देशमें नररत्न पैदा कर सकें और प्रकृति जन्य जड़ स्मारकों के भयंकर गढ़ेसे आर्य्योंको बचा सकें।

(३०) जिस समय आर्य्य समाजपर विचित्र संशय राज्यवर्ग कर रहाथा उस समय गुरुकुल कांगडीके मुख्याधिष्ठाताजी ने मुनिवर पं. गुरुदत्तजी कृत पुस्तकें उस अँग्रेज महोदयको दीं जो इंग्लैण्डसे आयाथा—उस महोदय के दर्शन बडौदा में हमें भी हुए—" उसने कहा कि आर्य्य समाज एक शान्ति प्रसारक धार्मिक संघ है " मैंने पूछा कि कैसे? उसने झट पं. गुरुदत्तजी का वह अमर स्तूपवत् लेख पढकर मुझेसुनाया, ' जो धन के डाह ' के नामसे प्रसिद्ध है और जिसकी प्रतीक है यह मनुका श्लोकः—

अर्थकामेश्व सक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते ॥
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥१३॥मनु.

अर्थ और कामों में जो पुरुष नहीं फंसे हैं उनको धर्मोपदेश का विधान है और जो पुरुष धर्म जानने की इच्छा रखते हैं उन को परम प्रमाण वेद है। पं. गुरुदत्तजी के उस लेखमें उस सरल साधु जीवन वाले ऋषियों की संस्कृति का वर्णन है जिसको मनन करके मनुष्य आडम्बर शून्य होकर धर्मात्मा तथा साधु जीवनवाला बन सकता है। लोकैषणा और रजोगुणके दोषों से मुक्त करनेवाली यह महौषधी है जो आर्य्य समाज सहस्रों की संख्या में यूरोप और अमेरिका तक पं. गुरुदत्त का उक्त लेख पहुंचा सका है आज वह जड़ स्मारक के लिये यत्न करे तो सच जानिये उच्च कोटिके मनुष्यों में उसकी हंसी होगी। ईश्वर हमारे सब भाईयों को सद्बुद्धि दे यही नम्र प्रार्थना है।

(३१) इस समय आर्य प्रजा (हिन्दू प्रजा) की दो भारी सामाजिक कमजोरियां हैं। एक तो यह है कि वह जवान विधवाओंका पुनर्विवाह नहीं करता। दूसरी निर्बलता उनका मूर्ति पूजक होना है। मूर्ति पूजा के दोष केवल विद्वान् हिन्दू समझ चुके हैं। किन्तु

साधारण हिन्दू अभीतक मन्दिरोंके भक्त होने से जगह जगह इस समय मुसल्मानों से अपने मन्दिर और मूर्तियां तुडवा रहे हैं। यदि इस समय मूर्ति पूजा और मन्दिर बनवानेका व्यसन हिन्दू प्रजा छोड़ दे तो कोई भी मुसलमान इस विषय में उनको पीड़ा नहीं दे सकता। इस समय हिन्दू प्रजा का लोकमान्य तिलक समान बडा भारी उपकार करनेवाला वह होगा जो उनको बतलावे कि कारावास में रहकर तुमको सन्मार्ग दर्शाने के लिये लोकमान्य तिलकजीने गीतारहस्य लिखा और अब तुम गीतापर आरूढ होकर मूर्ति पूजा छोडदो। सचतो यह है कि इस समय महर्षि दयानन्द का सत्यार्थ प्रकाश घरघर पहुंचाना चाहिये, ताकि मूर्ति पूजा और मन्दिर प्रियता आर्य्य प्रजा से निकल जावे, और इनके प्राणबचें। इस देश काल में जैसा कि अब है जो मनुष्य आर्य्य (हिन्दू) प्रजा को स्तूप रचने रचाने की तरफ ले जाना चाहते हैं, वह हिन्दु आर्य्य प्रजा को यवनों से पीडित होने का मानो भारी अवसर दे रहे हैं। जब पुराने मन्दिरोंकी ही खैर नहीं तो नये स्तूप कैसे बच सकेंगे।

(३२) महर्षि की जन्म शताब्दी मनाने के लिये जो कुछ योजनाएं आर्य्य प्रतिनिधि सभाओं की तरफसे हो रही हैं उनके अतिरिक्त हमारी तुच्छ सम्मति में सब से बडी जरूरत यह है कि इस समय पुर्वी एशिया में वैदिक धर्म प्रचारार्थ एक उपदेशक मंडली भेजी जावे और हो सके तो अमेरिका आदि देशोंमें भी वह मंडली जावे। इस मंडली के प्रचार से जो गौरव वैदिक धर्म्म का फैलेगा वह अकथनीय है। मुनिवर पं. गुरुदत्तजी यदि दो वर्ष और जी जाते तो स्थिर रूपसे अमेरिका में आर्य्य धर्म्म प्रचारक सभा वा आर्य्य समाज रचकर वहां रहते किन्तु अब हमें इस अवसर पर अवश्यही उक्त मंडली की स्थापना करनी चाहिये। स्तूपादिसे लाख गुना वढ़ कर ऋषिऋण हम चुका कर कृतज्ञ हो सकते हैं। प्रोफेसर रामदेवजी महात्मा नारायणस्वामीजी तथा पं. भगवद्दत्तजी सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभाकी तरफसे भेजे जांय यह हमारा दृढ़ मत है। श्रीयुत डॉ. केशवदेवजी जो उक्त सभाके मन्त्री हैं अपने अनुभवसे हमारे मतकी अधिक पुष्टि कर सकते हैं यह हमें आशा है।

ऋषिऋण चुकाने की शास्त्रोक्त विधि

(३२) मनु, अ० ३-८१ में लिखा है कि:—

स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन्होमैर्देवान्यथाविधि ।
पितॄन्श्राद्धैश्च नृनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा ॥१॥

(अर्थ) स्वाध्याय (विद्याग्रहणकरने तथा विद्यादान) से ऋषियों, होमसे देवताओं (भौतिक तत्त्वों) और श्राद्धोंसे पितरों, अन्नसे मनुष्यों तथा बलिकर्मसे अन्य भूतों को सत्कृत करे।

प्राचीन वैदिक काल में ऋषि पूजन तथा ऋषि ऋण चुकाने की एक मात्र सर्वोत्तम विधि यथार्थ विद्याभ्यास तथा विद्यादान थी जो कि उक्त श्लोकसे प्रकट है। वैदिक धर्मियों का यही धर्म है कि ऋषि दयानन्द के किये उपकारों से मुक्त होने के लिये अधिक आर्य स्कूल, अधिक गुरुकुलें अधिक उपदेशक तथा अधिक पुरोहित नियुक्त करें।

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् ।
अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानोव्रजत्यधः ॥ १ ॥
अधीत्यविधिवद्वेदान्पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः ।
इष्ट्वाच शक्तितोयज्ञैर्मनोमोक्षेनिवेशयेत् ॥ २ ॥

मनु. अ. ६ श्लो. ३५—३६

(अर्थ) तीन ऋणों को चुकाकर मन को मोक्ष में लगावे। विना ऋणोंके चुकाये चतुर्थ आश्रमको धारण करने वाला नीचे गिरता है। विधियुक्त वेदोंको पढ कर विवाह आदिसे पुत्रों का उत्पन्न कर यथा शक्ति ज्योतिष्टोमादि यज्ञ करके (ऋषि ऋण, पितृऋणं देवऋण; इनसे निवृत्त हुआ चतुर्थ आश्रममें) मोक्षमें मन लगावे॥

उक्त श्लोकों में तीन ऋणों का वर्णन है। उसमें ऋषि ऋण चुकाने की विधि वेद अध्ययन ही है जो वेद का पण्डित होगा वह उसको औरों को पढ़ायेगा यह भाव उसके अन्तर्गत है। इस लिये वेद विद्या वा वैदिक सिद्धान्तों को जानकर उसका प्रचार वा दान करने वाले अध्यापक तथा उपदेशक ऋषि ऋण से मुक्त हो सकते हैं इस लिये इसके विरुद्ध स्तूपादि को ऋषि ऋण उतारने की विधि समझना अनार्ष कर्म है। सृष्टि के आदि काल से लेकर उक्त आर्ष विधि भारत वर्ष में करोड़ों वर्ष-तक रही किन्तु जब संस्कृत भाषा का ह्रास होकर पाली तथा पंजाबी भाषाएं बनने लगीं वा जिस समय बौद्ध राजे शासन कर्त्ता हुए उस समय स्तूपको बौद्ध लोगोंने

" स्मारक " समझना आरम्भ किया उससे पूर्व सर्व संस्कृत साहित्य में इसका कहीं भी उल्लेख न होने से एक जिज्ञासु वा समीक्षक (रिसर्च स्कालर) कह सकता है कि वह अवैदिक वा अनार्ष प्रथा है। संस्कृत कोष के निम्न लिखित लेख से हमारे इस अनुसन्धान की पुष्टि हो रही है।

स्तूपः—एक ढेर, वा टेकरी। मुद्राराक्षस नामी संस्कृत नाटक में जो पं. वैशाखदत्त कृत है उसके ३–१५–२ में यह स्तूप शब्द बौद्ध स्मारक के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।

(३४) स्वर्गस्थ कोल्हापुर नरेश श्रीमान् शाहु छत्रपतिजीको मैंने अंग्रेजी भाषामें एक लेख ऋषि दयानन्द सम्बन्धी ता. ८–९–२१ ई. को दिया था उसकी खरी नक़ल मेरे पास है। इस लेखमें मैंने एक बात यह लिखी थी कि बुद्धदेवने स्वयं ग्रन्थ रचकर नहीं छोडे, जब कि ऋषि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश आदि अपने रचे छोड गये हैं। इस लिये यह ग्रन्थ मानो उनका काम दे रहे हैं।

इस लिये स्तूप वादी महाशयों को उक्त ग्रन्थों को ऋषि दयानन्दजी की पवित्र आवाज समझ उसके विरुद्ध जड स्मारक रचने के विचारों को त्याग देना चाहिये।

सब ही जानते हैं कि पृथ्वीराज ने दिल्लीमें जो स्तूप बनाया था वह अब " पृथुस्तूप " नहीं किन्तु कुतब मीनार का नाम पाकर लोगों को मानो दर्शारहा है कि वह धन जो मेरे बनाने में खर्च हुआ उससे यदि वीरसेना तैय्यार की जाती तो स्वदेश की अधिक रक्षा होती।

जड पदार्थ, भला क्या अमर स्मारक हो सकते हैं यह तत्व मुझसे समझ लो।

इस विषयको समाप्त करनेसे पूर्व हम नीचे कुछ वेद मंत्र महर्षिदयानन्द के ऋग्वेद भाष्यसे लिखते हैं जिन पर चलना प्रत्येक आर्य बन्धुका चाहे वह वैदिक वा सनातनी आर्य्य हो परमधर्म होना चाहिये।

उषो ये ते प्र यामेषु युंजते मनो दानाय सूरयः।
अत्राह तत्कण्वं एषां कण्वतमो नाम गृणाति नृणाम् ॥
ऋग्वेद मं० १–अ० ९ सू० ४८ नं० ४

" पदार्थः–" हे विद्वन् जो (सूरयः) स्तुति

करने वाले विद्वान् लोग (ते) आपसे उपदेश पाकर (अत्र) इस (उषः) प्रभातके (यामेषु) प्रहरों में (दानाय) विद्यादिदानके लिये (मनः) चित्तको (प्रयुंजते) प्रयुक्त करते हैं वे (कण्वः) मेधावी (एषाम्) इन (नृणाम्) प्रधान विद्वानोंके (नाम) नामों को (गृणाति) प्रशंसित करता है वह (कण्वतमः) अतिशय मेधावी होता है ॥४॥ "

(भावार्थ)—" जो मनुष्य एकान्त पवित्र निरुपद्रव देशमें स्थिर होकर यमादि संयमान्त उपासना के नव अंगोंका अभ्यास करते हैं वे निर्मल आत्मा होकर ज्ञानी श्रेष्ठ सिद्ध होते हैं और जो इनका संग और सेवा करते हैं वे भी शुद्ध अन्तःकरण होकर आत्मयोगके जानने के अधिकारी होते हैं । "

इस मंत्रमें " नृणाम् " शब्द के अर्थ महर्षि दयानन्दने संस्कृत में " विद्याधर्मेषुनायकानां मनुष्याणांमध्ये" किये हैं । इस का भाव यह है कि जो विद्वानों तथा धर्मात्मा मनुष्यों के नायक (लीडर) अथवा " प्रधान विद्वान " हैं । इसी को आंगलभाषामें ' ग्रेट मैन ' वा

' हीरो ' कहा जाता है। इन के स्मारक बनाने का प्रश्न इस समय चल रहा है। वेदने बतलाया कि महान पुरुष वा विद्वानों को मेधावी मानकर इन के ' नामों ' को जो प्रशंसित करना चाहते हैं उन भक्तों को चाहिये कि वह इनके सपूत बनें अर्थात् वह इनसे भी बढकर मेधावी वा कण्वतम बनें। और वह कैसे बन सकते हैं उसका उपाय भी मंत्र में दर्शा दिया कि वह प्रातः काल के पहरों में जीवन सुधार के लिये योगाभ्यास तथा आत्मचिन्तन करें।

आर्य्य समाज भूषण महात्मा हंसराजजीने 'मिलाप' नामीपत्रमें में लिखा है कि:—

" यह काल इस बात के लिये तैय्यार नहीं कि अशोक, फिल्प द्वितीय, वा औरंगज़ेब का रूप धारण कर अपने देश को नष्ट करने की सामग्री पैदा की जावे"

इस से पाया गया कि अशोकादि बौद्ध राजाओंने जो धर्मप्रचार की धुन में स्तूप आदि रचने में राज्यकोष को नष्ट कर दिया उसका बुरा फल राज्यपर आगे चल-कर निकला।

हमें याद रखना चाहिये कि महर्षि दयानन्दजी ने लेख वा भाषणकी समाप्ती पर ओम् शान्ति, शान्ति शान्तिः की जो आर्ष रीत चलाई है उसका खंडन कर-जो सज्जन " **नमो भगवते दयान्दाय** " के वचन वा " **ऋषिदयानन्दकी जय** के जय घोष (जयकारे) चलाना चाहते है वह महर्षिके उपदेश वा लेखशैली के विरुद्ध चलते हैं। इस अनार्ष रीत को त्यागना प्रत्येक आर्यमहाशय तथा महर्षिभक्त का परम धर्म होना चाहिये ॥

ओम् शान्ति, शान्ति, शान्तिः ।

वैदिक तथा हिन्दी साहित्य के उत्तोमोत्तम पुस्तकों

का

[illegible]पूर्व संग्रह

सृष्टिविज्ञान २) संस्कारचन्द्रिका ३॥) त्यौहारपद्धति १) ब्रह्मयज्ञ ।॥) शरीर विज्ञान ।≈) त्रिदेवनिरूपण ।-) तुलनात्मक धर्मविचार १) अवतारहस्य ।॥) नीतिविवेचन १।) समुद्रगुप्त ॥≈) श्रीहर्ष ॥) कोषकी कथा ॥) गीतासार ।≈) गुजराती हिन्दी कोष ६) आत्मस्थान विज्ञान -) स्वर्ण प्रतिमा २) बहता हुआ फूल २) साहित्यालोचन २) उद्यान ।॥≈) नंदन निकुंज) भारतीय जागृति १) दृष्टान्तसागर १।) उपनिषद् प्रकाश) देशदर्शन २) नारी धर्म विचार १॥) कॉलेज होस्टल ।) आत्मविजय ।॥) अत्याचार का अन्त ।॥) मंजरी १≡) दुर्गा ।≈) भगवानकी लीला ।॥)

जो सज्जन व पुस्तक प्रकाशक हमारी प्रकाशित निम्न लिखित पुस्तकों से अपनी पुस्तकें परिवर्तन करना चाहें वह पत्रव्यवहार करें

(१) सइजये इस्लामपर एक नजर ≈ (२) ऋषिपूजा का वैदिक स्वरूप ≈ सब) प्रकारकी पुस्तके मिलनेका पता:-

महेन्द्रप्रताप कीर्तिबाग बडोदा.